श्रीमद् भागवत का यह सार
भगवद् भक्ति ही आधार

श्रीमद् भागवत रसिक कुटुंब

रुद्र गीत(भागवत मुखस्थ परीक्षा हेतु)

श्रीमद्भागवतमहापुराणम्

चतुर्थः(स्) स्कंधः

अथ चतुर्विं(म्)शोऽध्यायः

श्रीरुद्र उवाच

जितं(न्) त आत्मविद्धुर्यस्- वंस्तये स्वंस्तिरंस्तु मे ।

भवता राधसा राद्धं(म्), सर्वस्मा आत्मने नमः ॥ 1 ॥

श्री-रुद्रः उवाच– शिवजी ने कहा; जितम्- समस्त महिमाएँ, उत्कर्ष; ते– तुम्हारे; आत्म-वित्– स्वरूपसिद्ध; वर्य— श्रेष्ठ; स्वस्तये—कल्याण के लिए; स्वस्तिः– कल्याण; अस्तु — हो; मे– मेरा; भवता– आपसे; आराधसा- सब विधि से पूर्ण द्वारा; राद्धम् — पूज्य; सर्वस्मै— परमात्मा; आत्मने— परमात्मा को; नमः– नमस्कार है ।

नमः(फ्) पङ्कजनाभाय, भूतसूक्ष्मेन्द्रियात्मने ।

वासुदेवाय शान्ताय, कूटस्थायं स्वरोचिषे ॥ 2 ॥

नमः—नमस्कार है; पङ्कज-नाभाय — उन भगवान् को जिनकी नाभि से कमल प्रकट होता है; भूत-सूक्ष्म- इन्द्रिय वस्तुएँ; इन्द्रिय– इन्द्रियाँ; आत्मने— उत्पत्ति; वासुदेवाय- भगवान् वासुदेव को; शान्ताय- सदैव शान्त रहने वाले को; कूट-स्थाय—अपरिवर्तित रहने वाले को; स्व- रोचिषे - स्वयं प्रकाश को

सङ्कर्षणाय सूक्ष्माय, दुरन्तायान्तकाय च ।

नमो विश्वप्रबोधाय, प्रद्युम्नायान्तरात्मने ॥ 3 ॥

सङ्कर्षणाय – निर्माण के स्वामी को; सूक्ष्माय- सूक्ष्म रूप या अव्यक्त को; दुरन्ताय- दुर्लंघ्य को; अन्तकाय- संहार के स्वामी को; च- भी; नमः– नमस्कार; विश्व- प्रबोधाय - ब्रह्माण्ड का विकास करने वाले को; प्रद्युम्नाय- प्रद्युम्न को; अन्तः-आत्मने—घट-घट वासी परमात्मा को ।

नमो नमोऽनिरुद्धाय, हृषीकेशेन्द्रियात्मने ।

नमः(फ्) परमहं(म्)साय, पूर्णाय निभृतात्मने ॥ 4 ॥

नमः — आपको नमस्कार है; नमः- नमस्कार है; अनिरुद्धाय- अनिरुद्ध को; हृषीकेश- इन्द्रियों के स्वामी; इन्द्रिय-आत्मने— इन्द्रियों के नियामक को; नमः- नमस्कार है; परम-हंसाय - परमहंस को; पूर्णाय- परम पूर्ण को; निभृत-आत्मने- उसे जो इस जगत से अलग स्थित है।

स्वर्गापवर्गद्वाराय, नित्यं(म्) शुचिषदे नमः ।

नमो हिरण्यवीर्याय, चातुर्होत्राय तन्तवे ॥ 5 ॥

स्वर्ग–स्वर्गलोक; अपवर्ग- मोक्ष का मार्ग; द्वाराय— द्वार को; नित्यम्- शाश्वत; शुचि-षदे- परम पवित्र को; नमः है; नमः –नमस्कार है; हिरण्य– स्वर्ण; वीर्याय– वीर्य को; चातुः- होत्राय– चातुर्होत्र नामक वैदिक यज्ञ को; तन्तवे- विस्तार करने वाले को ।

नम ऊर्ज इषे त्रय्याः(फ्), पतये यज्ञरेतसे ।

तृप्तिदाय च जीवानां(न्), नमः(स्) सर्वरसात्मने ॥ 6 ॥

नमः- नमस्कार है; ऊर्जे— पितृलोक के पोषक को; इषे- समस्त देवताओं का भरण करने वाला; त्रय्याः- तीनों वेदों के; पतये- स्वामी को; यज्ञ- यज्ञ; रेतसे– चन्द्रलोक के प्रमुख श्रीविग्रह को; तृप्ति-दाय– उनको जो सबों को तृप्त करते हैं; च- भी; जीवानाम्— जीवात्माओं का; नमः- नमस्कार है; सर्व-रस- आत्मने- सर्वव्यापी परमात्मा को ।

सर्वसत्त्वात्मदेहाय, विशेषायं स्थवीयसे ।

नमस्त्रैलोक्यपालाय, सहओजोबलाय च ॥ 7 ॥

सर्व—समस्त; सत्त्व- अस्तित्व; आत्म- जीव; देहाय- शरीर को; विशेषाय- विभिन्नता को; स्थवीयसे- भौतिक संसार को; नमः- नमस्कार; त्रैलोक्य- तीनों लोकों के; पालाय- पालक; सह— के साथ; ओजः- ओज; बलाय- बल को; च— भी।

अर्थलिं(ङ्)गाय नभसे, नमोऽन्तर्बहिरात्मने ।

नमः(फ्) पुण्याय लोकाय, अमुष्मै भूरिवर्चसे ॥ 8 ॥

अर्थ–तात्पर्य; लिङ्गाय— प्रकट करने हेतु; नभसे– आकाश को; नमः- नमस्कार; अन्तः- नमस्कार; अन्तः- भीतर; बहिः– तथा बाहर; आत्मने—अपने आपको; नमः– नमस्कार; पुण्याय– पुण्य कर्मों को; लोकाय— सृष्टि के लिए; अमुष्मै— मृत्यु के परे; भूरि-वर्चसे— परम तेज ।.

प्रवृत्ताय निवृत्ताय, पितृदेवाय कर्मणे ।

नमोऽधर्मविपाकाय, मृत्यवे दुःखदाय च ॥ 9 ॥

प्रवृत्ताय—प्रवृत्ति; निवृत्ताय— निवृत्ताय; पितृ-देवाय– पितृलोक के स्वामी को; कर्मणे- सकाम कर्मों के फल को; नमः- नमस्कार; अधर्म—अधर्म; विपाकाय— फल को; मृत्यवे– मृत्यु को; दुःख-दाय- समस्त प्रकार के दुखों का कारण; च-भी।

नमस्त आशिषामीश, मनवे कारणात्मने ।

नमो धर्माय बृहते, कृष्णायाकुण्ठमेधसे ।

पुरुषाय पुराणाय, सां(ङ्)ख्ययोगेश्वराय च ॥ 10 ॥

नमः– नमस्कार; ते— तुमको; आशिषाम् ईश- हे समस्त आशीर्वादों को प्रदान करने वालों में श्रेष्ठ; मनवे- परम मन या परम मनु को; कारण-आत्मने- समस्त कारणों के कारण; नमः- नमस्कार; धर्माय– समस्त धर्मों के ज्ञाता को; बृहते- सर्व श्रेष्ठ; कृष्णाय– कृष्ण को; अकुण्ठ-मेधसे- जिनकी चेतना कभी कुण्ठित नहीं होती उन्हें; पुरुषाय- परम पुरुष को; पुराणाय- सबसे प्राचीन; साङ्ख्य- योग-ईश्वराय- सांख्य योग के नियमों के अधीश्वर को; च- तथा ।

शक्तित्रयसमेताय, मीढुषेऽहं(ङ्)कृतात्मने ।

चेतआकूतिरूपाय, नमो वाचोविभूतये ॥ 11 ॥

शक्ति-त्रय– तीन प्रकार की शक्तियाँ; समेताय- आगार को; मीढुषे– रुद्र को; अहङ्कृत-आत्मने- अहंकार के स्रोत; चेतः- ज्ञान; आकूति—कार्य करने की उत्सुकता; रूपाय– रूप को; नमः- मेरा नमस्कार है; वाचः- वाणी को; विभूतये- विभिन्न प्रकार के ऐश्वर्यों को 1

दर्शनं(न्) नो दिदृक्षूणां(न्), देहि भागवतार्चितम् ।

रूपं(म्) प्रियतमं(म्) स्वानां(म्), सर्वेन्द्रियगुणाञ्जनम् ॥ 12 ॥

दर्शनम् — दर्शन; नः– हमारी; दिदृक्षूणाम्— देखने की इच्छा; देहि- कृपा करके दिखाएं; भागवत- भक्तों का; अर्चितम्- उनके द्वारा पूजित; रूपम्— स्वरूप; प्रिय-तमम्— सर्वाधिक प्रिय; स्वानाम्— अपने भक्तों का; सर्व-इन्द्रिय– सभी इन्द्रियाँ; गुण—गुण; अञ्जनम्— अत्यन्त मनोहर ।

स्निग्धप्रावृड्घनश्यामं(म्), सर्वसौन्दर्यसङ्ग्रहम् ।

चार्वायतचतुर्बाहुं(म्), सुजातरुचिराननम् ॥ 13 ॥

स्निग्ध— चिकना; प्रावृट्— वर्षाकाल के; घन-श्यामम्— घने बादलों सा; सर्व– समस्त ; सौन्दर्य – सुन्दरता; सङ्ग्रहम् – राशि; चारु– सुन्दर; आयत- शारीरिक अंग; चतुः-बाहु - चार भुजाओं वाले को; सु-जात- अत्यन्त सुन्दर; रुचिर– अत्यन्त मनोहर; आननम्—मुख;

पद्मकोशपलाशाक्षं(म्), सुन्दरभ्रु सुनासिकम् ।

सुद्विजं(म्) सुकपोलास्यं(म्), समकर्णविभूषणम् ॥ 14 ॥

.पद्म-कोश– कमल पुष्पों का गुच्छा; पलाश- पंखड़ियाँ, दल; अक्षम्— नेत्र; सुन्दर – सुन्दर; भ्रु– भौंहें; सु-नासिकम्— उन्नत नाक; सु-द्विजम्– सुन्दर दाँत; सु-कपोल- सुन्दर मस्तक; आस्यम्– मुख; सम-कर्ण- एकसमान सुन्दर कान; विभूषणम्- पूर्णतः सज्जित ।

प्रीतिप्रहसितापां(ङ्)ग- मलकैरुपशोभितम् ।
लसत्पङ्कजकिं(ञ्)जल्क - दुकूलं(म्) मृष्टकुण्डलम् ॥ 15 ॥

प्रीति—अनुग्रहपूर्ण; प्रहसित– हास्य; अपाङ्गम्– तिरछी चितवन; अलकैः- घुँघराले वालों से; रूप–सौंदर्य; शोभितम्— सुशोभित; लसत्— चमकता हुआ; पङ्कज- कमल का; किञ्जल्क- केशर; दुकूलम्— वस्त्र; मृष्ट- झलमलाते; कुण्डलम् - कान के आभूषण;

स्फुरत्किरीटवलय- हारनूपुरमेखलम् ।
शङ्खचक्रगदापद्म- मालामण्युत्तमर्द्धिमत् ॥ 16 ॥

स्फुरत् — चमचमाता; किरीट- मुकुट; वलय- कंकण; हार- गले की माला; नूपुर— पाँव का घुँघुरुदार- आभूषण; मेखलम्—करधनी ; शङ्ख – शंख; चक्र– चक्र; गदा—गदा; पद्म– कमल का फूल; माला- फूल की माला; मणि— मोती; उत्तम — श्रेष्ठ; ऋद्धि-मत्— इस कारण और भी सुन्दर ।

सिं(म्)हस्कन्धत्विषो बिभ्रत्- सौभगग्रीवकौस्तुभम् ।
श्रियानपायिन्या क्षिप्त- निकषाश्मोरसोल्लसत् ॥ 17 ॥

सिंह–शेर; स्कन्ध—कंधे; त्विषः– बालों की लटें; बिभ्रत्— धारण किये हुए; सौभग- भाग्यवाली; ग्रीव– गर्दन;- कौस्तुभम्— कौस्तुभ मणि; श्रिया– सुन्दरता; अनपायिन्या– कभी न घटने वाली; क्षिप्त-मात करने वाली ; निकष– कसौटी; अश्म–पत्थर; उरसा- वक्षस्थल के साथ; उल्लसत्- झिलमिलाती है।.

पूररेचकसं(वृँ)विग्न- वलिवल्गुदलोदरम् ।
प्रतिसं(ङ्)क्रामयद्विश्वं(न्), नाभ्याऽऽवर्तगभीरया ॥ 18 ॥

पूर– श्वास; रेचक— निः श्वास; संविग्न— चलायमान; वलि- उदर में पड़ने वाली सिलवटें; वल्गु– सुन्दर; दल– बरगद के पत्ते के समान; उदरम्—पेट; प्रतिसङ्क्रामयत्— नीचे की ओर भँवरदार; विश्वम्— ब्रह्माण्ड; नाभ्या– नाभि; आवर्त— कुण्डली; गभीरया— गहराई में ।

श्यामश्रोण्यधिरोचिष्णुर्- दुकूलस्वर्णमेखलम् ।
समचार्वङ्घ्रिजङ्घोरु- निम्नजानुसुदर्शनम् ॥ 19 ॥

श्याम- श्याम वर्ण का; श्रोणि- कमर के निचे वाला भाग; अधि- अतिरिक्त ; रोचिष्णु - सुहावना; दुकूल- वस्त्र; स्वर्ण- सुनहली; मेखलम्—करधनी; सम– समान; चारु– सुन्दर; अङ्घ्रि– चरणकमल; जङ्घ– पिंडली; ऊरु— जाँघें; निम्न– निचली; जानु - घुटने; सु-दर्शनम्- सुघड़, दर्शनीय ।

पदा शरत्पद्मपलाशरोचिषा,

नखद्युभिर्नोऽन्तरघं(वँ) विधुन्वता ।

प्रदर्शयं स्वीयमपास्तसाध्वसं(म्) ,

पदं(ङ्) गुरो मार्गगुरुस्तमोजुषाम् ॥ 20 ॥

पदा—चरणकमल द्वारा; शरत्- शरद ऋतु; पद्म-कमल पुष्प; पलाश- दल; रोचिषा– अत्यन्त मनोहर; नख– नाखून; द्युभिः—तेज से; नः– हमारा; अन्तः- अघम्— मल; विधुन्वता- धो सकने वाला; प्रदर्शय— दिखलाइये; स्वीयम् — अपना; अपास्त — घटता हुआ; साध्वसम् - जगत का कष्ट; पदम् — चरणकमल; गुरो– हे गुरु; मार्ग– पथ; गुरुः– गुरु; तमः-जुषाम्- अज्ञान के कारण कष्ट उठाने वाले व्यक्ति ।

एतद्रूपमनुध्येय-मात्मशुद्धिमभीप्सताम् ।

यद्भक्तियोगोऽभयदः(स्), स्वधर्ममनुतिष्ठताम् ॥ 21 ॥

एतत्—यह; रूपम्—रूप; अनुध्येयम् — ध्यान करना चाहिए; आत्म- स्व; शुद्धिम्– शुद्धि; अभीप्सताम्– इच्छा रखने वालों का; यत्—जो; भक्ति-योगः- भक्ति; अभय-दः- निर्भय कराने वाली; स्व-धर्मम्— अपने वृत्तिपरक कार्यों को; अनुतिष्ठताम्— करने में।.

भवान् भक्तिमता लभ्यो, दुर्लभः(स्) सर्वदेहिनाम् ।

स्वाराज्यस्याप्यभिमत, एकान्तेनात्मवित्गतिः ॥ 22 ॥

भवान्–आप; भक्ति-मता- भक्त द्वारा; लभ्यः- प्राप्य; दुर्लभः- प्राप्त कर पाना अत्यन्त कठिन; सर्व-देहिनाम्— अन्य समस्त देहधारियों का; स्वाराज्यस्य- स्वर्ग के राजा का; अपि— भी; अभिमतः- अन्तिम लक्ष्य; एकान्तेन — तादात्म्य के द्वारा; आत्म-वित्- स्वरूपसिद्ध का; गतिः- गन्तव्य ।

तं(न्) दुराराध्यमाराध्य, सतामपि दुरापया ।

एकान्तभक्त्या को वाञ्छेत्- पादमूलं(वँ) विना बहिः ॥ 23 ॥

तम् — उसको; दुराराध्यम्- पूजा करना अत्यन्त कठिन; आराध्य- पूजा करके; सताम् अपि-सत्पुरुषों के लिए भी; दुरापया- प्राप्त कर पाना दुष्कर; एकान्त– शुद्ध; भक्त्या- भक्ति से; कः- ऐसा कौन है; वाञ्छेत्— चाहेगा; पाद-मूलम्- चरणकमल; विना- रहित; बहिः- बाहरी लोग।

यत्र निविष्टमरणं(ङ्) , कृतान्तो नाभिमन्यते ।

विश्वं(वँ) विध्वं(म्)सयन् वीर्य- शौर्यविस्फूर्जितभ्रुवा ॥ 24 ॥

यत्र—जहाँ; निर्विष्टम् अरणम्– शरणागत प्राणी; कृत-अन्तः- दुर्दम्य काल; न आक्रमण नहीं करता; विश्वम्— समूचा ब्रह्माण्ड; विध्वंसयन् — संहार द्वारा; वीर्य - पराक्रम; शौर्य- प्रभाव; विस्फूर्जित- मात्र विस्तार से; भ्रुवा- भौंहों के

क्षणार्धेनापि तुलये, न स्वर्गं(न्) नापुनर्भवम् ।

भगवत्सं(ङ्)गिसं(ङ्)गस्य, मर्त्यानां(ङ्) किमुताशिषः ॥ 25 ॥

क्षण-अर्धेन- आधा क्षण; अपि- भी; तुलये- तुलना कर सकता; न- कभी नहीं; स्वर्गम्— स्वर्गलोक; न– न तो; अपुनः-भवम्—ब्रह्म से तादात्म्य; भगवत्– भगवान् के; सङ्गि– संगी; सङ्गस्य– संग का लाभ उठाने वाला; मर्त्यानाम्– बद्धजीव का; किम् उत- वहाँ क्या है; आशिषः- आशीर्वाद ।

अथानघाङ्घ्रेस्तव कीर्तितीर्थयो-

रन्तर्बहिः(स्)स्नानविधूतपाप्मनाम् ।

भूतेष्वनुक्रोशसुसत्त्वशीलिनां(म्),

स्यात्सं(ङ्)गमोऽनुग्रह एष नस्तव ॥ 26 ॥

अथ—अतः; अनघ-अङ्घ्रेः- भगवान् के, जिनके चरण समस्त पापों को नष्ट करने वाले हैं; तव- तुम्हारी; कीर्ति— कीर्ति महिमा; तीर्थयोः– पवित्र गंगा जल; अन्तः– भीतर; बहिः– बाहर; स्नान- स्नान करना; विधूत- धोया हुआ; पाप्मनाम्— मन की दूषित अवस्था; भूतेषु– सामान्य जीवों को; अनुक्रोश- कृपा या वर; सु-सत्त्व- पूर्णतया सतोगुण में; शीलिनाम्— ऐसे गुणों वालों का; स्यात्— हो; सङ्गमः– साथ, समागम; अनुग्रहः– कृपा; एषः– यह; नः– हमको; तव- तुम्हारी।

न यस्य चित्तं(म्) बहिरर्थविभ्रमं(न्),

तमोगुहायां(ञ्) च विशुद्धमाविशत् ।

यद्भक्तियोगानुगृहीतमं(ञ्)जसा,

मुनिर्विचष्टे ननु तत्र ते गतिम् ॥ 27 ॥

न—कभी नहीं; यस्य- जिसका; चित्तम्- हृदय; बहिः– बाहरी; अर्थ- रुचि; विभ्रमम्— मोहित; तमः- अंधकार; गुहायाम्— कूप में; च- भी; विशुद्धम्- शुद्ध; आविशत्- प्रवेश किया; यत्— जो; भक्ति-योग– भक्ति; अनुगृहीतम्— कृपा प्राप्त; अञ्जसा– प्रसन्नतापूर्वक; मुनिः– विचारवान; विचष्टे– देखता है; ननु – फिर भी; तत्र—वहाँ; ते— तुम्हारे; गतिम्— कार्यकलाप ।

यत्रेदं(वँ) व्यज्यते विश्वं(वँ), विश्वस्मिन्नवभाति यत् ।

तत् त्वं(म्) ब्रह्म परं(ञ्) ज्योति- राकाशमिव विस्तृतम् ॥ 28 ॥

यत्र—जहाँ; इदम्—यह; व्यज्यते - प्रकट है; विश्वम्— ब्रह्माण्ड; विश्वस्मिन्— दृश्य जगत में; अवभाति- प्रकट होता है; यत्- जो; तत्—वह; त्वम्- तुम; ब्रह्म- निर्गुण ब्रह्म; परम्- दिव्य; ज्योतिः– तेज; आकाशम्- अकाश; इव– सदृश; विस्तृतम्— फैला हुआ ।

यो माययेदं(म्) पुरुरूपयासृजद्,

बिभर्ति भूयः(ह) क्षपयत्यविक्रियः ।

यद्भेदबुद्धिः(स्) सदिवात्मदुः(स्)स्थया,

तमात्मतन्त्रं(म्) भगवन् प्रतीमहि ॥ 29 ॥

यः– जो; मायया- माया से; इदम् – यह; पुरु— अनेक; रूपया– रूपों के द्वारा; असृजत्— उत्पन्न किया; बिभर्ति- पालन करता है; भूयः–पुनः; क्षपयति– संहार करता है; अविक्रियः- बिना किसी परिवर्तन के; यत्— जो; भेद-बुद्धिः– अन्तर करने की बुद्धि; सत्— शाश्वत; इव– सदृश; आत्म-दुःस्थया- अपने आपको कष्ट देते हुए; त्वम्– तुमको; आत्म-तन्त्रम्- पूर्णतया स्वतंत्र; भगवन्— हे भगवन्; प्रतीमहि- मैं समझता हूँ

क्रियाकलापैरिदमेव योगिनः(श्),

श्रद्धान्विताः(स्) साधु यजन्ति सिद्धये ।

भूतेन्द्रियान्तः(ख्)करणोपलक्षितं(वँ),

वेदे च तन्त्रे च त एव कोविदाः ॥ 30 ॥

क्रिया—कार्य; कलापैः– विधियों से; इदम्– यह; एव– निश्चय ही; योगिनः- योगीजन; श्रद्धा-अन्विताः- श्रद्धा तथा दृढ़ निश्चय से; साधु— उचित रीति से; यजन्ति- पूजा करते हैं; सिद्धये- सिद्धि के लिए; भूत- भौतिक शक्ति; इन्द्रिय– इन्द्रियाँ ; अन्तः-करण—हृदय; उपलक्षितम्— के द्वारा लक्षित; वेदे- वेदों में; च- भी; तन्त्रे- शास्त्रों में; च- भी; ते— आप; एव– निश्चय ही; कोविदाः– पटु, मर्मज्ञ ।

त्वमेक आद्यः(फ्) पुरुषः(स्) सुप्तशक्तिस्-

तया रजः(स्)सत्त्वतमो विभिद्यते ।

महानहं(ङ्) खं(म्) मरुदग्निवार्धराः(स्) ,

सुरर्षयो भूतगणा इदं(यँ) यतः ॥ 31 ॥

त्वम्—तुम; एकः–अकेले; आद्यः– आदि; पुरुषः- पुरुष; सुप्त- सोई हुई; शक्तिः- शक्ति; तया— उससे; रजः– रजोगुण; सत्त्व–सतोगुण; तमः– अज्ञान, तमोगुण; विभिद्यते- अनेक भेद हो जाते हैं; महान्— समष्टि शक्ति; अहम्— अहंकार; खम्- आकाश; मरुत्—वायु; अग्नि– अग्नि; वाः– जल; धराः– पृथ्वी; सुर- ऋषयः– देवता तथा ऋषिगण; भूत-गणाः– जीव; इदम्— यह सब; यतः— जिससे ।

सृष्टं(म्) स्वशक्त्येदमनुप्रविष्टश्-

चतुर्विधं(म्) पुरमात्मां(म्)शकेन ।

अथो विदुस्तं(म्) पुरुषं(म्) सन्तमन्तर्-

भुङ्क्ते हृषीकैर्मधु सारघं(यँ) यः ॥ 32 ॥

सृष्टम् — सृष्टि में; स्व-शक्त्या- अपनी ही शक्ति से; इदम्- इस दृश्य जगत में; अनुप्रविष्टः- प्रवेश करते हुए; चतुः-विधम्- चार प्रकार के; पुरम् — शरीर; आत्म-अंशकेन - अपने ही अंश रूप; अथो– अतः; विदुः– जानो; तम्— उस; पुरुषम् - भोक्ता को; सन्तम्— स्थित; अन्तः- भीतर; भुङ्क्ते– भोग करता है; हृषीकैः- इन्द्रियों द्वारा; मधु- मिठास; सार -घम्- मधु, शहद; यः—जो।.

स एष लोकानतिचण्डवेगो,

विकर्षसि त्वं(ङ्) खलु कालयानः ।

भूतानि भूतैरनुमेयतत्त्वो,

घनावलीर्वायुरिवाविषह्यः ॥ 33 ॥

सः—वह; एषः–यह; लोकान्— सारे लोकों को; अति- अत्यधिक ; चण्ड-वेग : - प्रचण्ड वेग; विकर्षसि- नष्ट करता है; त्वम्—तुम; खलु–फिर भी; काल-यानः - समय आने पर; भूतानि- सभी जीव; भूतैः- अन्य जीवों से; अनुमेय- तत्त्वः- परम सत्य का अनुमान लगाया जा सकता है; घन-आवलीः - बादल; वायुः– वायु; इव– सदृश; अविषह्यः- असह्य ।.

प्रमत्तमुच्चैरितिकृत्यचिन्तया,

प्रवृद्धलोभं(वँ) विषयेषु लालसम् ।

त्वमप्रमत्तः(स्) सहसाभिपद्यसे,

क्षुल्लेलिहानोऽहिरिवाखुमन्तकः ॥ 34 ॥

प्रमत्तम्—पागल पुरुष; उच्चैः– जोर से; इति – इस प्रकार; कृत्य— किये जाने वाले; चिन्तया– ऐसी इच्छा से; प्रवृद्ध-अत्यधिक अग्रसर; लोभम्- लालच; विषयेषु- भौतिक सुख में; लालसम्- ऐसा चाहते हुए; त्वम्– तुम; अप्रमत्तः- पूर्णतया समाधि में; सहसा— एकाएक; अभिपद्यसे- उन्हें पकड़ लेता है; क्षुत्– भूखा; लेलिहान- लालची जीभ से; अहिः– साँप; इव– सदृश; आखुम्— चूहे को; अन्तकः- विनष्ट करने वाला, काल ।

कस्त्वत्पदाब्जं(वँ) विजहाति पण्डितो,

यस्तेऽवमानव्ययमानकेतनः ।

विशङ्क्यास्मद्गुरुरर्चति स्म यद्,

विनोपपत्तिं(म्) मनवश्चतुर्दश ॥ 35 ॥

कः–कौन; त्वत्—तुम्हारे; पद-अब्जम् — चरणकमल; विजहाति— अवहेलना करेगा; पण्डितः- विद्वान; यः– जो; ते — तुमको; अवमान– उपेक्षा करते हुए; व्यथमान- घटाते हुए; केतनः– यह शरीर; विशङ्कया- बिना किसी सन्देह के; अस्मत्- हमारे; गुरु :– गुरु, पिता; अर्चति स्म- पूजा करता था; यत्— जो; विना– बिना; उपपत्तिम्- विक्षोभ; मनवः- मनुगण; चतुः-दश— चौदह ।

अथ त्वमसि नो ब्रह्मन्, परमात्मन् विपश्चिताम् ।
विश्वं(म्) रुद्रभयध्वस्त- मकुतश्चिद्भया गतिः ॥ 36 ॥

अथ—अतः; त्वम्—तुम, हे स्वामी; असि— हो; नः– हमारे; ब्रह्मन्— हे परब्रह्म; परम-आत्मन्— हे परमात्मा; विपश्चिताम्- विद्वान मनुष्यों के लिए; विश्वम्- सारा ब्रह्माण्ड; रुद्र-भय-रुद्र से भयभीत; ध्वस्तम्- संहार किया हुआ; अकुतश्चित्-भया-निश्चित रूप से निर्भर, भयशून्य; गतिः- गन्तव्य,आश्रय ।.

॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहं(म्)स्यां(म्) सं(म्)हितायां(ञ्)
चतुर्थस्कन्धे रुद्रगीतं(न्) नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥